International Journal of Applied Research 2017; 3(9): 540-542

ISSN Print: 2394-7500
ISSN Online: 2394-5869
Impact Factor: 5.2
IJAR 2017; 3(9): 540-542
www.allresearchjournal.com
Received: 20-07-2017
Accepted: 23-08-2017

डॉ. नन्दकिशोर ठाकुर
मध्य विद्यालय प्रखण्ड कॉलोनी,
नाथनगर, भागलपुर, बिहार, भारत

Corresponding Author:
डॉ. नन्दकिशोर ठाकुर
मध्य विद्यालय प्रखण्ड कॉलोनी,
नाथनगर, भागलपुर, बिहार, भारत

गीताशिक्षा में ज्ञान–विज्ञानः एक विवेचन

डॉ. नन्दकिशोर ठाकुर

प्रस्तावना

''सर्वोपनिषदो गावो दोग्धा गोपालनन्दनः।
पार्थो वत्सः सुधीर्भोक्ता दुग्धं गीतामृतं महत्।।'' [1]

गीतामाहात्म्यसूचक उपर्युक्त श्लोक में उपनिषद् रूपी गायों के दुग्धामृत के रूप में निखिल ज्ञान–विज्ञान के प्रकाशक तथा जीवनोपयोगी मार्गों के प्रदर्शक भगवद्गीता का बड़ा सुन्दर रूपक प्रस्तुत किया गया है। सदसद्विवेकी सज्जनों द्वारा पुनः पुनः पीयमान इस दुग्धामृत से अमरत्व की प्राप्ति होती है। वस्तुतः इस दुग्धामृत के बून्द–बून्द में ज्ञान–विज्ञान की संजीवनी समायी हुई है। श्रीमद्भगवद्गीता योगेश्वर भगवान् श्रीकृष्ण के मुखारविन्द से निःसृत दिव्यवाणी है, जिसकी महिमा अपार और अपरिमित है। यह तो अखिल ब्रह्माण्डनायक गीतागायक श्रीकृष्ण का हृदयकल्प ही है। यह एक ऐसा अनुपमेय शास्त्र है, जिसका एक भी शब्द शिक्षा से रहित नहीं है–

''असंशयं महाबाहो मनो दुर्निग्रहं चलम्।
अभ्यासेन तु कौन्तेय वैराग्येण च गृह्यते।।'' [2]

प्रस्तुत आलेख में गीतोक्त शिक्षान्तर्गत विशुद्ध ज्ञान–विज्ञान विवेक को विवेचित किया जायेगा। गीता के विभिन्न प्रसङगों में ज्ञान–विज्ञान शब्द का बहुधा पृथक् प्रयोग होता है किन्तु अधोलिखित स्थलों पर ज्ञान–विज्ञान का सह प्रयोग गीतामर्मज्ञों के लिए विशेषतः विचारणीय है

''तस्मात्त्वमिन्द्रियाण्यादौ नियम्य भरतर्षभ।
पाप्मानं प्रजहि ह्येनं ज्ञानविज्ञाननाशनम्।।'' [3]

उपर्युक्त श्लोक में इन्द्रिय–नियमन के साथ–साथ समस्त पापों के परित्याग की शिक्षा दी गयी है। चूँकि पाप समस्त ज्ञान–विज्ञान का विनाशक है । अतः पाप का परित्याग परमावश्यक है।
यहाँ ज्ञान शब्द का अर्थ शास्त्र या आचार्य से आत्मस्वरूप का अवबोध तथा विज्ञान शब्द का अर्थ ज्ञान को अनुभवगम्य बनाने से है। गीता के षष्ठ अध्याय के आठवे श्लोक में ज्ञान–विज्ञान का एकत्र प्रयोग द्रष्टव्य है–

''ज्ञानविज्ञानतृप्तात्मा कूटस्थो विजितेन्द्रियः।
युक्त इत्युच्यते योगी समलोष्टाश्मकाञ्चनः।।'' [4]

यहाँ ज्ञान से अभिप्राय शास्त्रोक्त पदार्थों के परिज्ञान से है तथा विज्ञान से अभिप्राय है शास्त्रोक्त ज्ञात ज्ञान का स्वयं अनुभव करना। ऐसे ज्ञान और विज्ञान से तृप्त अन्तःकरण वाले महाभाग को ही यहाँ ''ज्ञान–विज्ञान तृप्तात्मा'' इस पद से निर्दिष्ट किया गया है।
इसके बाद हमें गीता के सातवें अध्याय के दूसरे श्लोक में ज्ञान–विज्ञान पद का एकत्र दर्शन प्राप्त होता है–

''ज्ञानं तेऽहं सविज्ञानमिदं वक्ष्याम्यशेषतः।
यज्ज्ञात्वा नेह भूयोऽन्यज्ज्ञातव्यमवशिष्यते।।'' [5]

यहाँ ज्ञानपद परमात्मविषयक ज्ञान का बोधक है तथा विज्ञानपद स्वानुभव का बोध कराता है। इस श्लोक में प्रयुक्त ज्ञान–विज्ञान पदों से यही अभिप्राय है कि जो परमात्मतत्त्व का ज्ञाता होता है,

वह सर्वज्ञ बन जाता है। उपर्युक्त श्लोक में प्रयुक्त 'ज्ञान' पद भी ''स्वानुभवयुक्तज्ञान'' [6] का ही वाचक है। उपर्युक्त भाव को गीताकार ने 'अपरा' एवं 'परा' प्रकृति के माध्यम से स्पष्ट करते हुए कहा है कि अष्टधा विभक्त 'अपरा' नाम वाली प्रकृति एवं 'परा' यानी 'जीवरुपा' चेतनात्मिका प्रकृति ही निखिल ब्रह्माण्ड के उद्भव का मूल कारण है तथा इन्हीं के कारण परम ब्रह्म सर्ग, पालन तथा प्रलय का निमित्त कारण है।

पुनश्च, गीता के अनुसार परमात्मा के अतिरिक्त जगत् के अन्य किसी भी पदार्थ का अस्तित्व नहीं है। सारा संसार सूत्र में अनुस्यूत मणियों के समान ही प्रतीत होता है–

मत्तः परतरं नान्यत्किंचिदस्ति धनंजय।
मयि सर्वमिदं प्रोतं सूत्रे मणिगणा इव।। [7]

यहाँ रज्जु शब्द आधुनिक विज्ञान के नवीनतम सिद्धान्त ''रज्जु सिद्धान्त'' ;जतपदह जैमवतलद्ध का प्रतिपादक है।

तदनन्तर नवम अध्याय के प्रथम श्लोक में भी ज्ञान–विज्ञान पद का प्रयोग एकत्र द्रष्टव्य है–

''इदं तु ते गुह्यतमं प्रवक्ष्याम्यनसूयवे।
ज्ञानं विज्ञानसहितं यज्ज्ञात्वा मोक्ष्यसेऽशुभात्।।'' [8]

उपर्युक्त श्लोक में प्रयुक्त 'ज्ञान' पद 'वासुदेवः सर्वमिति' आदि श्लोकांशों के तात्त्विक ज्ञान से सम्बद्ध है। विज्ञानसहित अर्थात् अनुभवयुक्त उपर्युक्त ज्ञान ही अत्यन्त गोपनीय सम्यक् ज्ञान कहलाता है, जिसको जानकर मानव संसार के अमंगल बन्धन से विमुक्त हो जाता है।

उपर्युक्त श्लोक में प्रयुक्त 'ज्ञान' पद के अनन्तर 'तु' पद की विद्यमानता अन्य ज्ञानों से व्यावर्तन (पृथक्करण) के लिए है। यह ज्ञान साक्षात् मोक्ष प्राप्ति का कारण है। यह उपनिषदों में वर्णित ''आत्मवेदं सर्वम्'', ''एकमेवाद्वितीयम्'' तथा गीतोक्त ''वासुदेवः सर्वम्'', इत्यादि श्रौत तथा स्मार्तोक्त ज्ञान में गतार्थ है। शांकरभाष्यानुसार यहाँ 'विज्ञान' पद अनुभवयुक्त ज्ञान यानी साक्षात्कारात्मक ज्ञान का वाचक है। इसको राजविद्या, राजगुह्य, पवित्र, प्रत्यक्षफलदायी, धर्मयुक्त, सुखकर तथा अविनाशी रुप से व्याख्यायित किया गया हैं। गीता के अनुसार अव्यक्त नामक परमात्मा से निखिल प्रपञ्च जल से व्याप्त वर्फ के समान आच्छादित है। ईशावस्योपनिषद् के प्रथम मन्त्रानुसार भी सारा जगत् ईश्वरीय सत्ता से परिपूर्ण है–

''ईशावास्यमिदं सर्वम्'' [9]

औपनिषदिक सिद्धान्तानुसार स्थावर–जंगमात्मक समस्त सृष्टि ब्रह्म नामक परम सत्ता में अन्तर्भूत होने पर भी उसमें अवस्थित नहीं है। साकार वस्तुओं की भाँति ब्रह्म में संसर्ग दोष का अभाव है। सङ्गहीन वस्तु कहीं भी आधेय भाव से स्थित नहीं होती है। पुनश्च आकाश में विचरण करने वाली वायु का अधिष्ठान आकाश ही है। उसी प्रकार चराचर प्रपञ्च परम ब्रह्म के संकल्प के एक भाग में ही अवस्थित है।

गीता के उपर्युक्त श्लोकों में ज्ञान–विज्ञान के एकत्र प्रयोग के भिन्न–भिन्न अभिप्रायों की विवेचना यहाँ की गयी है। गीता में वस्तुतः आत्मतत्त्व–विषयक ज्ञान को ही वास्तविक ज्ञान कहा गया है। अतएव गीता में जिस ज्ञान का अर्थबोध कराया गया है उसी अर्थ को श्रीमद्भागवत महापुराण में भी पुष्ट किया गया है–

''तद् विजानीहि यज्ज्ञानमात्मतत्त्वनिदर्शनम्।।'' [10]

आध्यात्मिक दृष्टि से देखने पर आत्मविवेक ज्ञान ही अध्यात्म ज्ञान होता है, क्योंकि अध्यात्म ज्ञान में 'निष्ठा' को ज्ञान की संज्ञा दी गई है। अतः ज्ञान के स्वरूप को प्रतिपादित करते हुए योगेश्वर भगवान् श्रीकृष्ण ने स्वयं ही गीता के तेरहवें अध्याय में कहा है–

''अध्यात्मज्ञाननित्यत्वं तत्त्वज्ञानार्थदर्शनम्।
एतज्ज्ञानमिति प्रोक्तमज्ञानं यदतोऽन्यथा।।'' [11]

समग्र विमर्श की दृष्टि से हम देखते हैं कि भगवान् ने जितने मुक्त कण्ठ से ज्ञान के स्वरूप का प्रतिपादन किया है, उतना विस्तार विज्ञान के विवेचन में नहीं दिखाई पड़ती है। इसका रहस्य गीता के उद्गमस्वरूप उपनिषदों में अनुसन्धेय है।

तैत्तिरीयोपनिषद् में भी विज्ञान का कार्य एवं महत्त्व प्रतिपादित होता है–

''विज्ञानं यज्ञं तनुते, कर्माणि तनुतेऽपि च, विज्ञानं देवाः सर्वे ब्रह्म ज्येष्ठमुपासते।।'' [12]12

अर्थात् विज्ञान के द्वारा ही यज्ञ को विस्तारित किया जाता है। विज्ञान ही सांसारिक कर्मों का विस्तार करता है। साथ ही विज्ञान के द्वारा प्राणी सभी पापों को नष्ट कर उत्तमोत्तम फल को प्राप्त करता है। मुण्डकोपनिषद् में शौनक द्वारा पूछे जाने पर महर्षि अङ्गिरा ने विद्या के दो प्रकारों को निर्दिष्ट करते हुए दोनों को ही वेदितव्य अर्थात् जानने योग्य बतलाया है–

''द्वे विद्ये वेदितव्ये इति ह स्म यद् ब्रह्मविदो वदन्ति। परा चौवापरा चेति। तत्र अपरा ऋग्वेदो यजुर्वेदः सामवेदोऽथर्ववेदः शिक्षा कल्पो व्याकरणं निरूक्तं छन्दो ज्योतिषमिति। अथ परा यया तदक्षरम् अधिगम्यते।'' [13]

यहाँ पराविद्या ही गीता के ज्ञानपद से विवक्षित है तथा अपराविद्या गीता के विज्ञान पद से। अपरारूप विज्ञान से 'क्षर' का तथा परारूप ज्ञान से 'अक्षर' की प्राप्ति होती है। इसी तत्त्व को श्वेताश्वतरोपनिषद् में भी प्रतिपादित किया गया है। ईशावास्योपनिषद् में भी ''अविद्यया मृत्युं तीर्त्वा विद्ययामृतमश्नुते।''[14] कहकर विद्या को अमृततत्त्व की प्राप्ति का साधन तथा अविद्या को मृत्युतरण का साधन बताया गया है।

पुनश्च गीता के चौदहवें अध्याय के आरम्भ में ही 'ज्ञान' शब्द का प्रयोग किया गया है तथा वहाँ भी आत्मसाक्षात्कारात्मक ज्ञान में ही यह गतार्थ है–

''परं भूयः प्रवक्ष्यामि ज्ञानानां ज्ञानमुत्तमम्'' [15]

इस ज्ञान को प्राप्त कर प्राणी ब्रह्म साधर्म्य को प्राप्त कर महासर्ग एवं प्रलय के बन्धन से विमुक्त हो जाता है–

''इदं ज्ञानमुपाश्रित्य मम साधर्म्यमागताः'' [16]

गीताशिक्षा में ज्ञान का सारगर्भित अर्थ है। जब तक मनुष्य में अज्ञान रुपी अन्धकार होता है तब तक वह अशान्ति में भटकता रहता है और जब उनके पास ज्ञान उपलब्ध हो जाता है तब वह परम शान्ति अर्थात् मोक्ष को प्राप्त कर लेता है, जो सुख के लिए आवश्यक है। कहा भी गया है–

'अशान्तस्य कुतः सुखम्'' [17]

ज्ञान उस व्यक्ति को प्राप्त होता है जो श्रद्धावान् हो, ज्ञान प्राप्त करने के लिए तत्पर हो और संयतेन्द्रिय हो। यहाँ पर ज्ञान प्राप्त करने की तीन आवश्यक शर्तों की चर्चा की गयी है– ज्ञानार्थी को श्रद्धावान्, तत्पर और जितेन्द्रिय होना चाहिए। इन्द्रियों को

नियंत्रण में रखना ज्ञान प्राप्त करने की आवश्यक शर्त है। अतएव इस सन्दर्भ में यह श्लोक बहुत ही अर्थगौरव प्रदान करता है–

"श्रद्धावान् लभते ज्ञानं तत्परः संयतेन्द्रियः।
ज्ञानं लब्ध्वा परां शान्तिमचिरेणाधिगच्छति।।" [18]

उपर्युक्त श्लोक में प्रयुक्त 'ज्ञान' के सम्बन्ध में शांकरभाष्य के अनुसार कहा गया है कि जो श्रद्धावान्, तत्पर और संयतेन्द्रिय होता है वह अवश्य ही ज्ञान को प्राप्त कर लेता है। ज्ञान को प्राप्त कर ही मनुष्य मोक्ष रुप परम शान्ति को यानी उपरामता को बहुत शीघ्र तत्काल ही प्राप्त कर लेता है। यथार्थ ज्ञान से तुरंत ही मोक्ष प्राप्त हो जाता है, यह सब शास्त्रों और युक्तियों से सिद्ध सुनिश्चित बात है। इस विषय में थोड़ा भी संशय नहीं करना चाहिए, क्योंकि संशय बड़ा पापी है।

पुनश्च, अज्ञान को हमारे शास्त्रों में सभी दुःखों का कारण बताया गया है। महाभारत में युद्ध से पहले जब अर्जुन विपक्ष की सेना को देखकर घबड़ा गए तब उनके अंग शिथिल होने लगे, मुख सूखने लगा, शरीर में कम्पन होने लगा और गाण्डीव उनके हाथों से छूटने लगा। उसके बाद ज्ञान के उपदेश ने ही उनके इन्द्रियों को सुखाने वाले शोक को दूर किया। इस प्रसंग में गीतोक्त अमृतवाणी बहुत ही श्लाघनीय है–

सीदन्ति मम गात्राणि मुखं च परिशुष्यति।
वेपथुश्च शरीरे मे रोमहर्षश्च जायते।।
गाण्डीवं स्रंसते हस्तात्त्वक्चैव परिदह्यते।
न च शक्नोम्यवस्थातुं भ्रमतीव च मे मनः।। [19]

निष्कर्षतः परमात्मविषयक सम्यक् 'ज्ञान' ज्ञानपद से अभिप्रेत है तो प्रकृत्यात्मक विशिष्ट 'ज्ञान' विज्ञानपदवाच्य है। ज्ञान–विज्ञान विवेक विमर्शोपरान्त यह कहा जा सकता है कि इन दोनों में ज्ञान से ही परम पुरूषार्थ की प्राप्ति हो सकती है। अतएव भगवान् श्री कृष्ण ने अपनी गीताशिक्षा में प्रकृत्यात्मक विज्ञान के महत्त्व की उपेक्षा किये बिना ज्ञान पद का प्रचुर प्रयोग परमपुरूषार्थ की सिद्धि हेतु किया है।

संदर्भ ग्रन्थः

1. गीतामाहात्म्य– 06
2. श्रीमद्भगवद्गीता– 06/35
3. श्रीमद्भगवद्गीता–03/41
4. श्रीमद्भगवद्गीता– 06/08
5. श्रीमद्भगवद्गीता– 07/02
6. शांकरभाष्य गीता– 7/2
7. श्रीमद्भगवद्गीता– 7/7
8. श्रीमद्भगवद्गीता– 09/01
9. ईशावास्योपनिषद्– मन्त्र–01
10. श्रीमद्भागवत महापुराण– 02/05/01
11. श्रीमद्भगवद्गीता– 13/11
12. तैतिरीयोपनिषद्– पञ्चम अनुवाक
13. मुण्डकोपनिषद्– 01/04–05
14. ईशावास्योपनिषद्– मन्त्र– 11
15. श्रीमद्भगवद्गीता– 14/01
16. श्रीमद्भगवद्गीता– 14/02
17. श्रीमद्भगवद्गीता– 2/66
18. श्रीमद्भगवद्गीता– 4/39
19. श्रीमद्भगवद्गीता– 1/29–30